भारतीय ज्ञान परंपरा

संस्कृति, दर्शन, शैक्षिक विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परंपरा :

संस्कृति, दर्शन, शिक्षा विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2022-2023

ISBN : 978 - 81 - 89435 - 64 - 6

मूल्य - 300/-

रचना - भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

11. स्वामी श्रद्धानन्द और पत्रकारिता

डॉ. मुकेश शर्मा
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारत में पत्रकारिता का आरम्भ प्रायः उस समय से माना जाता है जब यूरोपीय व्यापारी यहाँ छपाई की कला लेकर आए। सबसे पहले पुर्तगालियों ने भारत में प्रिन्टिंग प्रेस की स्थापना की, जिसने आगे चलकर समाचार-पत्रों की परम्परा का मार्ग प्रशस्त किया। अंग्रेजी पत्रकारिता का इतिहास आगस्टस हिक्की के **बंगाल गजट** से आरम्भ होता है। 29 जनवरी 1780 को कलकत्ता से प्रकाशित यह पत्र भारत का पहला समाचार-पत्र था। इसमें उस समय के सामाजिक, राजनैतिक और प्रशासनिक विषयों पर खुलकर लिखा जाता था।

भारतीय समाज की आत्मा कही जाने वाली हिन्दी भाषा में पत्रकारिता का सूत्रपात अपेक्षाकृत बाद में हुआ। हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र **'उदन्त मार्तण्ड'** था, जिसका प्रकाशन 30 मई 1826 को कलकत्ता से हुआ। इसके सम्पादक पंडित युगलकिशोर शुक्ल थे। उदन्त मार्तण्ड ने उस समय के समाज, राजनीति और संस्कृति से सम्बन्धित समाचारों के साथ-साथ हिन्दी भाषियों के हितों की भी सार्थक अभिव्यक्ति की। यह पत्र लगभग डेढ़ वर्ष तक नियमित रूप से प्रकाशित होता रहा। किन्तु आर्थिक कठिनाइयों और उस समय पाठकों की सीमित संख्या के कारण 11 दिसम्बर 1827 को इसका अन्तिम अंक निकला। यद्यपि इसका प्रकाशन अल्पकालिक रहा, परन्तु इसने हिन्दी पत्रकारिता की नींव सुदृढ़ कर दी।

उदन्त मार्तण्ड के बाद हिन्दी पत्रकारिता की धारा अबाध रूप से प्रवाहित होती रही। शीघ्र ही बंगाल के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, मालवा और बम्बई जैसे प्रदेशों से भी हिन्दी समाचार-पत्र निकलने लगे। इन पत्रों ने समाज में जागरूकता फैलाने, राष्ट्रीय चेतना को बल देने तथा सामाजिक सुधार के आन्दोलन को गति प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार भारत की पत्रकारिता को आज लगभग 245 वर्ष और हिन्दी पत्रकारिता को लगभग 200 वर्ष पूरे हो चुके हैं।

1. स्वामी श्रद्धानन्द और पत्रकारिता

हिन्दी पत्रकारिता का वास्तविक उद्भव और विकास उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ।

यह वही काल था जिसे भारतीय इतिहास में पुनर्जागरण की शताब्दी कहा जाता है। इस समय समाज में नई चेतना, नए विचार और सुधार की आकांक्षाएँ प्रबल हो रही थीं। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती का समाचार पत्रों से गहरा सम्बन्ध रहा। उनके विचारों और शास्त्रार्थों ने न केवल धार्मिक जगत को झकझोर दिया, बल्कि तत्कालीन पत्रकारिता को भी सामग्री और दिशा प्रदान की।

महर्षिं दयानन्द का समाचार पत्रों में प्रथम उल्लेख सन् 1869 ई. में हुआ माना जाता है। उस वर्ष कानपुर के **'शोला-ए-तूर'** नामक पत्र ने उनके पं. हलधर ओझा के साथ हुए शास्त्रार्थ का विवरण प्रकाशित किया था। यद्यपि यह विवरण एकपक्षीय था, फिर भी इसने स्वामी दयानन्द के नाम को जनता के बीच पहुँचाने का कार्य किया। इसी वर्ष नवम्बर में महर्षि दयानन्द काशी पहुँचे और वहाँ की विद्वन्मण्डली के साथ मूर्तिपूजा पर प्रसिद्ध शास्त्रार्थ किया। इस ऐतिहासिक शास्त्रार्थ की प्रतिध्वनि केवल काशी या प्रान्तीय स्तर तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि उसका समाचार पश्चिमोत्तर प्रदेश, बंगाल और पंजाब तक फैल गया। उस समय के हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी समाचार पत्रों ने इस बहस का विस्तृत विवरण प्रकाशित किया और स्वामी दयानन्द के तर्कपूर्ण विचारों को जनता के सामने रखा।

यहीं से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी दयानन्द के विचार और व्यक्तित्व उन्नीसवीं शताब्दी की पत्रकारिता के लिए एक महत्वपूर्ण विषय थे। उनके शास्त्रार्थों, प्रवचनों और सुधारवादी विचारों ने पत्रकारिता को सशक्त सामग्री दी, जबकि पत्रकारिता ने भी उनके विचारों को व्यापक समाज तक पहुँचाने में अहम भूमिका निभाई।

जब बम्बई में सर्वप्रथम आर्य समाज की स्थापना की गई और उसके नियमों को औपचारिक रूप से निर्धारित किया गया, तभी समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यह अनुभव किया कि आर्य समाज के उद्देश्यों की पूर्ति केवल प्रवचनों या शास्त्रार्थों के माध्यम से ही संभव नहीं होगी। समाज के विचारों, सिद्धान्तों और सुधारात्मक संदेशों को दूर-दराज तक पहुँचाने के लिए पत्रकारिता का सहारा लेना आवश्यक है। इसी दृष्टि से महर्षि दयानन्द ने एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करने का निश्चय किया, जिसका नाम रखा गया—**'आर्यप्रकाश'**। यह पत्र आर्य समाज का मुखपत्र बनने वाला था, जो न केवल समाज की गतिविधियों को जनता तक पहुँचाए, बल्कि वेदसम्मत विचारों, धार्मिक सुधारों और समाजोपयोगी विषयों का प्रचार-प्रसार भी करे। बम्बई में पारित नियमावली में भी इस पत्र का स्पष्ट उल्लेख किया गया था—

नियम संख्या 5 - यह कहा गया कि प्रधान समाज में वेदोक्तानुकूल संस्कृत और आर्यभाषा में नाना प्रकार के सदुपदेश की पुस्तक होगी और एक 'आर्यप्रकाश' पत्र यथानुकूल आठ-आठ दिन में निकलेगा।

नियम संख्या 12 – पत्र के नियमित प्रकाशन के लिए आर्य समाज के सभासदों को उदारतापूर्वक धन प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चित की गई।

नियम संख्या 25 – इसमें सभासदों को आर्यप्रकाश पत्र की रक्षा और उन्नति के लिए सतत प्रयत्नशील रहने के लिए प्रवृत्त किया गया।

इन नियमों से स्पष्ट होता है कि आयज़ समाज की स्थापना के आरम्भिक समय से ही पत्रकारिता को संगठन की रीढ़ के रूप में देखा गया था। महर्षि दयानन्द भली–भाँति जानते थे कि यदि समाज–सुधार और धार्मिक नवजागरण का सन्देश व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाना है, तो इसके लिए समाचार पत्र सबसे प्रभावी साधन सिद्ध होगा।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज ने पत्रकारिता को अपने विचार–प्रसार का एक महत्वपूर्ण साधन बनाया। प्रारम्भ में आर्यप्रकाश के संकल्प के बाद धीरे–धीरे अनेक पत्र और पत्रिकाएँ प्रकाश में आने लगीं, जिनमें समाज के आदर्शों, उद्देश्यों और विचारधारा को प्रतिबिंबित किया गया।

कालान्तर में आर्य समाज की ओर से जिन पत्रों का प्रकाशन हुआ, उनमें प्रमुख हैं—देशहितैषी, आर्य गजट, आर्य मित्र, आर्यावर्त, सद्धर्म प्रचारक, सुदशा प्रवर्तक, तथा श्रद्धा आदि। इन पत्रों ने न केवल आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार किया, बल्कि उस समय के समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध जनमत को भी जाग्रत किया।

आर्यसमाजी पत्रकारिता की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि यह केवल हिन्दी तक ही सीमित नहीं रही। समाज के विचारों को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने के लिए उर्दू और अंग्रेजी भाषाओं में भी पत्र प्रकाशित किए गए। इस प्रकार आर्य समाज की पत्रकारिता ने भाषा की सीमाओं को पार करते हुए समाज के विभिन्न वर्गों और समुदायों को प्रभावित किया। इन पत्रों के माध्यम से आर्य समाज ने शिक्षा, महिला उत्थान, अस्पृश्यता–निवारण, स्वदेशी, राष्ट्रीय एकता और धार्मिक सुधार जैसे मुद्दों पर जनजागरण किया। परिणामस्वरूप, आर्यसमाजी पत्रकारिता उस दौर में केवल विचारों का वाहक न रहकर भारतीय पुनर्जागरण और राष्ट्रवाद की एक शक्तिशाली धारा बन गई।

स्वामी श्रद्धानन्द को निश्चय ही हिन्दी पत्रकारिता का जनक कहा जा सकता है। उन्होंने न केवल अपने जीवनकाल में पत्रकारिता को राष्ट्र और समाज की सेवा का सशक्त माध्यम बनाया, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी इसकी ठोस नींव रखी। स्वामी श्रद्धानन्द के सुपुत्र पंडित इन्द्र विद्यावाचस्पति तो मानो जन्मजात पत्रकार थे। उन्हें पत्रकारिता की प्रेरणा और प्रशिक्षण पिता से ही प्राप्त हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द ने जिस प्रकार समाज–सुधार, शिक्षा और राष्ट्रोत्थान के कार्यों में पत्र–पत्रिकाओं को माध्यम

बनाया, उसी परम्परा को उनके पुत्र ने और भी आगे बढ़ाया। गुरुकुल कांगड़ी, जो श्रद्धानन्द का स्वप्न संस्थान था, वही वास्तव में आर्यसमाजी पत्रकारिता की प्रयोगशाला भी बन गया। यहाँ पर स्वामी श्रद्धानन्द ने पत्रकारिता के जिस गोमुख का उद्भव किया, वह शीघ्र ही एक प्रवाहमान धारा में बदल गया। गुरुकुल के वातावरण में पत्रकारिता केवल लेखन-कला भर नहीं रही, बल्कि राष्ट्रभक्ति, वैचारिक साहस और सामाजिक उत्तरदायित्व का जीवंत पाठ बन गई। थोड़े ही समय में गुरुकुल के स्नातकों ने इस परम्परा को अपनी विरासत के रूप में स्वीकार किया और उसे और अधिक प्रशस्त बना दिया। परिणामस्वरूप, एक के बाद एक गुरुकुल स्नातक हिन्दी पत्रकारिता की अग्रिम पंक्ति में खड़े दिखाई देने लगे। उन्होंने समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं के माध्यम से जनता को जागरूक किया, समाज में सुधार की अलख जगाई और राष्ट्रीय आंदोलन को स्वर दिया।

स्वामी श्रद्धानन्द के सार्वजनिक जीवन का सबसे विश्वस्त साथी और मार्गदर्शक पत्र **'सद्धर्म प्रचारक'** था। यह पत्र उनके विचारों, योजनाओं और संघषोज़् का सशक्त प्रवक्ता बनकर सामने आया। मुन्शीराम जी (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द) जब तक आर्य समाज की पंक्ति में कार्यरत रहे, तब तक उनकी आवाज़ को दूर-दूर तक पहुँचाने का कायज़ **'सद्धर्म प्रचारक'** ने ही किया। इस पत्र के द्वारा उनकी लेखनी जनता तक पहुँची और उनके विचार समाज के हृदय में गहरे अंकित हो गए। कहा जा सकता है कि मुन्शीराम जी को आर्य समाज का अप्रतिद्वन्द्वी नेता बनाने में 'सद्धर्म प्रचारक' का अत्यंत बड़ा योगदान रहा। यह पत्र केवल समाचार या विचारों का वाहक नहीं था, बल्कि स्वामी श्रद्धानन्द की सेवा-भावना और संगठन-क्षमता का प्रधान साधन बन गया।

जालन्धर आर्य समाज के तीसरे वार्षिकोत्सव से पूर्व ही यह अनुभव होने लगा था कि समाज की बढ़ती गतिविधियों और कार्यों को एक सशक्त माध्यम की आवश्यकता है, जो इनका प्रचार-प्रसार कर सके और समाज के विचारों को जनता तक पहुँचा सके। इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए एक स्वयं की प्रेस स्थापित कर समाचार पत्र निकालने का विचार गंभीरता से सामने आया। उन दिनों जालन्धर और होशियारपुर के आर्यसमाजियों में गहरा भाईचारा और आत्मीय संबंध था। इसी कारण जब यह प्रस्ताव रखा गया तो होशियारपुर के प्रमुख आर्यसमाजी महाशय रामचन्द्र भी तुरंत सहमत हो गए। उन्होंने पत्र लिखकर यह सुझाव दिया कि यदि आर्य समाज की ओर से समाचार पत्र चलाने के लिए कोई कंपनी बनाई जाए, तो वे भी उसमें हिस्सेदार बनने को तैयार हैं। इस प्रस्ताव पर अमल करते हुए कुल 16 हिस्से बनाए गए, जिनकी कीमत पच्चीस-पच्चीस रुपये निश्चित की गई। स्वयं स्वामी श्रद्धानन्द (तब मुनशीराम) ने दो हिस्से लेकर इस योजना को प्रारम्भिक आधार प्रदान किया। जालन्धर में हाल ही में वकालत

करने आए और स्थानीय समाज के उप-प्रधान नियुक्त हुए लाला रामकृष्ण (जो बाद में आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान बने) भी हिस्सेदार बने। इसके अतिरिक्त— लाला देवराज, लाला सालिगराम वैश्य (प्रसिद्ध भण्डारी, गुरुकुल काँगड़ी), कपूरथला के लाला शरणामल आदि प्रमुख व्यक्तियों ने भी हिस्से लेकर इस योजना को सफल बनाने में सहयोग दिया।

आर्य समाज के भीतर प्रेस और समाचार-पत्र स्थापित करने का प्रयास पहले से ही चल रहा था, किन्तु निर्णायक कदम तब उठाया गया जब लाला देवराज जी के चले जाने के पश्चात् शेष सभासदों के उत्साह और जोश में और भी अधिक वृद्धि हुई। फाल्गुन 2, संवत् 1945 (14 फरवरी 1889) को हिस्सेदारों की एक महत्वपूर्ण बैठक बुलाई गई। इस बैठक में कपूर्थला से लाला गोविन्द सहाय को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया, क्योंकि प्रेस और उसके उपकरणों की खरीद-बिक्री का सौदा उन्हीं के माध्यम से हो रहा था। बैठक में हुई चर्चा और विचार-विमर्श के बाद उसी शाम को सभी निर्णय निश्चित कर दिए गए तथा गोविन्द सहाय जी को 50 रुपये बयाने के रूप में प्रदान किए गए।

इस बैठक में यह ऐतिहासिक निश्चय हुआ कि—

* प्रेस का नाम 'सद्धर्मप्रचारक' रखा जाएगा।

*प्रथम वैशाख संवत् 1946 विक्रमी से 'सद्धर्मप्रचारक' नामक **डेमी** आकार का छोटे आठ पृष्ठों का उर्दू साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया जाएगा।

* पत्र के संपादन हेतु लाला देवराज और मुनशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) को संयुक्त रूप से सम्पादक नियुक्त किया गया।

* कचहरी में प्रकाशन-पत्र (डिक्लेरेशन) जमा करने और प्रबन्धन का उत्तरदायित्व मुनशीराम जी को सौंपा गया, इस प्रकार वे पत्र के मैनेजर भी बने।

इस प्रकार 'सद्धर्मप्रचारक' का जन्म हुआ। जालंधर आर्यसमाज की गतिविधियों के प्रचार और प्रसार के लिए जब मुन्शीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द) ने प्रेस और समाचार-पत्र निकालने का विचार प्रकट किया, तो सभी ने उसका हर्षोल्लास के साथ स्वागत किया। कपूथज़्ला और होशियारपुर के आयज़ भाईयों ने भी इस योजना में पूरा सहयोग दिया। मित्रों की एक कम्पनी अथवा मण्डली बनाई गई और पच्चीस-पच्चीस रुपये के कुल सोलह हिस्से आपस में बाँटे गए। स्वयं मुन्शीराम जी ने दो हिस्से लेकर इस योजना के प्रति अपनी गहरी निष्ठा प्रदर्शित की।

2 फाल्गुन संवत् 1945 (14 फरवरी 1889 ई.) को हिस्सेदारों की सभा हुई। इस ऐतिहासिक बैठक में यह निश्चय हुआ कि प्रेस का नाम 'सद्धर्मप्रचारक' रखा जाएगा और इसी नाम से डेमी आकार का छोटा आठ पृष्ठों का उर्दू साप्ताहिक पत्र निकाला

जाएगा। इसका प्रकाशन प्रथम वैशाख संवत् 1946 से आरम्भ करने का निर्णय लिया गया। पत्र के लिए संपादकीय समिति का गठन हुआ, जिसमें मुन्शीराम जी और लाला देवराज जी को संयुक्त रूप से सम्पादक नियुक्त किया गया। वहीं, मैनेजरी का सम्पूर्ण कार्य मुन्शीराम जी के सुपुर्द किया गया। कचहरी में डिक्लेरेशन दाखिल करने का उत्तरदायित्व भी उन्हें ही दिया गया। प्रेस की व्यवस्था के लिए कपूर्थला के लाला गोविन्द सहाय जी को 50 रुपये बयाने देकर सौदा पक्का कर लिया गया। पत्र की नीति और दिशा-निर्देश पूर्णतः सम्पादकों पर छोड़ दिए गए। हिस्सेदारों ने पहले ही तय कर लिया कि वे इस विषय में कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे। यह स्वायत्तता वास्तव में 'सद्धर्मप्रचारक' की सफलता का आधार बनी।

निर्णय होने के मात्र दूसरे दिन ही सभी कानूनी कार्यवाहियाँ पूरी कर ली गईं। और तीसरे दिन— 4 फाल्गुन को मुन्शीराम जी ने पत्र की आवश्यकता और उसकी नीति सम्बन्धी एक विज्ञापन-पत्र तैयार कर अपनी ही प्रेस में उसे छपवा दिया। इस विज्ञापन को देखकर तत्कालीन आर्यसमाजी नेताओं ने भी इसे क्रांतिकारी कदम कहा।

इस प्रकार 'सद्धर्मप्रचारक' न केवल आर्य समाज का मुखपत्र बनकर सामने आया, बल्कि उसने स्वामी श्रद्धानन्द के सार्वजनिक जीवन और भारतीय पत्रकारिता की धारा में भी एक नया अध्याय जोड़ दिया।

महान स्वतन्त्रता सेनानी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का नाम भारतीय पत्रकारिता और स्वतन्त्रता आन्दोलन दोनों ही क्षेत्रों में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। उनके क्रान्तिकारी अग्रलेखों ने जनसाधारण के मन-मस्तिष्क को इतना प्रभावित किया कि युवाओं के भीतर बलिदान की भावना, त्याग का संकल्प और राष्ट्र-समर्पण की चेतना प्रज्वलित हो उठी। लोकमान्य तिलक का 'केसरी', स्वामी श्रद्धानन्द का 'सद्धर्म प्रचारक' और 'श्रद्धा', तथा बालमुकुन्द गुप्त का 'भारत मित्र' जैसे पत्र—ये सब केवल समाचार पत्र नहीं थे, बल्कि उस युग के 'क्रान्तिकारी शंखनाद' थे। इन पत्रों ने स्वतंत्रता के पथ पर चलने वाले युवकों और युवतियों की एक पूरी पीढ़ी तैयार कर दी। ब्रिटिश साम्राज्य इस वैचारिक आंधी से विचलित और भयभीत हो उठा, क्योंकि ये पत्र जनता के हृदय में साम्राज्यवाद-विरोधी विचारों की जड़ें गहरी कर रहे थे।

स्वामी श्रद्धानन्द के पत्र सद्धर्म प्रचारक, श्रद्धा और लिब्रेटर का अध्ययन करने से अनेक रोमांचकारी और प्रेरक तथ्य उद्घाटित होते हैं। इनमें जहाँ एक ओर धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण का स्वर मिलता है, वहीं दूसरी ओर प्रखर राष्ट्रवाद और विदेशी शासन के प्रति असहमति का उद्घोष भी सुनाई देता है। इन पत्रों की भाषा सरल, प्रखर और प्रभावशाली थी। वे सीधे जनमानस से संवाद करती थी। यही कारण था कि साधारण जनता भी इन्हें आत्मीयता से पढ़ती और उनमें निहित संदेश को अपना

कर्तव्य मानकर कार्यान्वित करने का प्रयास करती थी।

पत्रकारिता के क्षेत्र में महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) की जागृति वाराणसी में ही हुई थी। वाराणसी उस समय भारतीय पुनर्जागरण का केन्द्र था। महाकवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके मंडल ने जिस सांस्कृतिक चेतना और साहित्यिक आंदोलन का सूत्रपात किया था, उसने तत्कालीन युवा मन को गहरे प्रभावित किया। मुंशीराम भी इस मंडल के प्रभाव में आए और काव्य-रचना तथा समस्यापूर्ति जैसी साहित्यिक गतिविधियों में संलग्न हुए।

सन् 1873 में जब उन्होंने उच्च शिक्षा हेतु क्वींस कॉलेज, बनारस में प्रवेश लिया, तो यह काल हिन्दी पत्रकारिता और राष्ट्रीय चेतना दोनों के लिए महत्वपूर्ण था। ठीक इसी समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने '**हरिश्चन्द्र मैगजीन**' का प्रकाशन आरम्भ किया। यह घटना केवल साहित्यिक ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक इतिहास की एक बड़ी क्रान्ति थी। इस पत्रिका ने हिन्दी पत्रकारिता में राजनीति, उपनिवेशवाद, धर्म, इतिहास, भाषा, साहित्य और समाज सुधार जैसे गंभीर विषयों को स्थान दिया। इस प्रकार पहली बार हिन्दी भाषा केवल भावुकता और काव्यात्मकता तक सीमित न रहकर जन-जागरण और राष्ट्र-निर्माण का सशक्त माध्यम बनी।

स्वामी श्रद्धानन्द ने इस वातावरण से गहन प्रेरणा पाई। आगे चलकर उनकी पत्रकारिता ने भारतेन्दु परंपरा की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना को तो आगे बढ़ाया ही, साथ ही उसमें राष्ट्रीयता और क्रान्तिकारी विचारों का तीव्र संचार भी किया। वास्तव में, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में स्वामी श्रद्धानन्द की पत्रकारिता वह प्रदीप थी, जिसने अंधकारमय औपनिवेशिक वातावरण में जनता को राह दिखाने का कार्य किया।

'सद्धर्मप्रचारक' पत्र का प्रकाशन वस्तुतः मुंशीराम की निजी पहल थी, किन्तु इसकी प्रकृति और उद्देश्य आर्यसमाज के सिद्धान्तों तथा उसकी रीति-नीति के प्रचार-प्रसार से गहरे रूप में जुड़े हुए थे। पंजाब तक ही सीमित न रहकर यह पत्र अन्य प्रान्तों की आर्यसमाजों और आर्य जनसमुदाय तक पहुँचता और वहां विशेष रुचि के साथ पढ़ा जाता। यही कारण था कि आर्यसमाज की विचारधारा के प्रसार में इसे महत्वपूर्ण साधन के रूप में स्वीकार किया गया। इसी समय 'आयज़ पत्रिका' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक भी आर्य प्रतिनिधि सभा के अंतर्गत निकल रहा था और पं. लेखराम की स्मृति में सन् 1898 से 'आर्य मुसाफिर' नामक उर्दू पत्र का प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ, जिसका सम्पादन मुंशीराम स्वयं कर रहे थे।

पत्र की नीति के विषय में मतभेद की स्थिति अवश्य बनी, किन्तु उसका समाधान यह निकला कि सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सम्पादकों पर ही रहेगा और किसी हिस्सेदार को हस्तक्षेप का अधिकार नहीं होगा। इस प्रकार सम्पादकीय स्वतंत्रता को सुनिश्चित किया

गया। 3 फाल्गुन (16 फरवरी) को मुंशीराम ने यंत्रालय तथा पत्र की नीति पर एक लेख लिखा, जो छपाई का पहला नमूना बना और सर्वसाधारण के समक्ष प्रस्तुत किया गया। यही लेख आगे चलकर पत्र की भावी नीति और उद्देश्य का आधार बना। जब इसका विज्ञापन मार्च-अप्रैल में फिरोजपुर के जलसे में वितरित हुआ तो लाला साईंदास ने जालन्धर की टोली को उसकी तीक्ष्णता और उदारता के कारण 'एक्सट्रीम रेडिकल पार्टी' अथवा गरम दल की संज्ञा दी। यह उपाधि 'सद्धर्मप्रचारक' के तेजस्वी और निर्भीक स्वरूप का प्रमाण है।

स्वामी श्रद्धानन्द की जागरूकता और अध्ययनशीलता इसी प्रसंग से स्पष्ट होती है। उनके लिए पत्र निकालना ही लक्ष्य नहीं था, अपितु वे स्वयं को भी निरन्तर निखारते रहे। प्रेस खोलने का निश्चय होते ही उन्होंने स्वाध्याय की ओर अधिक ध्यान दिया। प्रतिदिन रात्रि को डेढ़ से दो घंटे तक पश्चिमी विद्वानों के ग्रन्थ पढ़ते और प्रात:काल डेढ़ घंटे सत्यार्थ प्रकाश तथा वेदभाष्य का अध्ययन करते। हर्बर्ट स्पेन्सर के अलावा, ड्रेपर की 'कनफ्लिक्ट बिट्वीन रीलिजन एण्ड साइंस', वेन की 'एजुकेशन इज ए साइंस', गीवो की 'हिस्ट्री आफ सिविलिजेशन', ल्यालकृत 'एशियाटिक स्टडीज' आदि के ग्रन्थों सहित बीस से अधिक ग्रन्थ उन्होंने छह महीनों में पढ़ डाले। इसी के साथ संस्कृत की लघुकौमुदी की पुनरावृत्ति भी आरम्भ की। इससे उनकी वैचारिक दृष्टि और अधिक व्यापक तथा सुदृढ़ हुई।

'सद्धर्मप्रचारक' यंत्रालय की स्थापना के दिनों में उनके जीवन में आलस्य का लेश मात्र न था। वे निरन्तर लोगों की शंकाओं का समाधान करते और आर्यसमाजिक या अन्य किसी भी सभा में सम्मिलित होना अपना कर्तव्य समझते। प्रात: और संध्या के स्वाध्याय का क्रम अनवरत चलता रहता। इन सबके साथ ही वे सामाजिक सुधार के कार्यों में भी सक्रिय थे। एक बाल-विधवा के विवाह की व्यवस्था को लेकर वे स्वयं चिन्तित रहते और इसके लिए प्रयत्नशील भी रहते।

वैशाखी के आनन्दोत्सव के शुभ दिन जब 'सद्धर्मप्रचारक' का जन्म हुआ, तभी से यह पत्र केवल समाचारों का साधन न रहकर सामाजिक कर्तव्यों का वहन करने वाला एक प्रहरी बन गया। आर्यसमाज में ऐसे अनेक घर थे जहाँ इस पत्र की पूरी फाइल को धार्मिक ग्रन्थों की भाँति सुरक्षित रखा जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि यह पत्र समाज के लिए आस्था, मार्गदर्शन और प्रेरणा का स्रोत था।

'प्रचारक' ने संकट के समय समाज का सच्चा हितैषी बनकर काम किया। संघर्ष की घड़ियों में यह वीर योद्धा की भाँति डटा रहा। जब निराशा गहरी हुई तब इसने दृढ़ आशा का संचार किया। भटके हुए लोगों को यह बार-बार धर्ममार्ग पर लाता रहा। इस पत्र की भूमिका मात्र विचार प्रस्तुत करने तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह समाज को

वैदिक आदर्शों के अनुरूप संगठित करने में भी सक्रिय रहा। इसने आर्यजगत् को भ्रातृत्वभाव की माला में पिरोया और वैदिक मन्त्र 'संगच्छध्वं, संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्' को व्यवहार में उतारने का कार्य किया।

'सद्धर्मप्रचारक' ने सम्पादकीय दायित्व निभाने में समाचार-पत्रों के सामने एक नया आदर्श प्रस्तुत किया। उस समय की प्रचलित पत्रकारिता में गन्दे विज्ञापन, ओछी भाषा, कमीने आक्षेप और व्यक्तिगत निन्दा को सफलता का साधन माना जाता था। परन्तु 'प्रचारक' ने इन सब से सदा ही यत्नपूर्वक दूरी बनाए रखी। इस प्रकार उसने पत्रकारिता को एक उच्च आदर्श प्रदान किया और यह सिद्ध किया कि समाचार-पत्र सच्चे उपदेशक और निर्भीक आन्दोलन बन सकते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द ने भारतेन्दु हरिचन्द्र को अपना पथप्रदर्शक पत्रकार मानते हुए साप्ताहिक पत्र निकालने का निश्चय किया। इसी क्रम में 19 फरवरी 1889 को 'सद्धर्मप्रचारक' का पहला अंक प्रकाशित हुआ। यह दिन भारतीय पत्रकारिता और आर्यसमाज—दोनों के लिए ऐतिहासिक था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से प्रभावित होकर स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में ऐतिहासिक कार्य किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि प्रतिनिधि सभा का दफ्तर और आर्यसमाजियों का पत्र-व्यवहार आर्यभाषा, अर्थात् हिन्दी में होना चाहिए। उनके शब्द थे—''क्या उर्दू का स्थान आर्यभाषा को लेते हुए मैं अपनी आँखों से देख सकूँगा?'' यह उद्घोषणा मात्र भाषाई आग्रह नहीं थी, बल्कि उनकी मातृभाषा हिन्दी के प्रति गहरी निष्ठा और राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक थी। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने उर्दू में निकलने वाले 'प्रचारक' को घाटा सहकर भी हिन्दी में प्रकाशित किया। उनके इस कदम ने हिन्दी पत्रकारिता में नया मोड़ ला दिया। आगे चलकर गुरुकुल कांगड़ी में विज्ञान, इतिहास, पुरातत्त्व और सांख्यिकी जैसे गम्भीर विषयों पर हिन्दी में पुस्तकों की रचना करवाई गई। महर्षि दयानन्द के पत्रों का सम्पादन करके उन्होंने हिन्दी गद्य और पत्र-संपादन की परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

स्वामी श्रद्धानन्द का साहित्यिक योगदान हिन्दी गद्य की अनेक विधाओं में दिखाई देता है। आत्मकथा के क्षेत्र में उनका ग्रन्थ 'कल्याण मार्ग का पथिक' पथप्रदर्शक सिद्ध हुआ। जीवनी-लेखन में 'आर्यपथिक लेखराम' ने नयी जीवन्तता और ऊर्जा भरी। संस्मरणों में 'बन्दीघर के विचित्र अनुभव' उस समय की संस्मरण कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। सांस्कृतिक निबन्धों में मातृभाषा का उद्धार और उत्तराखण्ड की महिमा विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने हिन्दी निबन्ध साहित्य को गहराई प्रदान की। समीक्षात्मक दृष्टि का परिचय आदिम सत्यार्थं प्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त में मिलता है, जहाँ उन्होंने गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया। शोधपरक कृतियों में मानव धर्मशास्त्र तथा

शासनपद्धति और पारसी–मत और वैदिक धर्म विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सबके माध्यम से वे हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा में सतत सक्रिय रहे।

उनके प्रयासों की सराहना उस समय के शीर्ष साहित्यकारों और विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से की। डॉ. श्यामसुन्दर दास, आचार्य विधुशेखर भट्टाचार्य, मुंशी प्रेमचन्द, गणेशशंकर विद्यार्थी और आचार्य चतुरसेन शास्त्री जैसे साहित्य–मनीषियों ने उनकी हिन्दी–जागरूकता और साहित्यिक सेवाओं की उच्च प्रशंसा की।

इस प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द का व्यक्तित्व केवल सामाजिक सुधारक, धार्मिक नेता या राजनैतिक क्रान्तिकारी तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य को भी नई दिशा और ऊँचाई प्रदान की। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि मातृभाषा केवल संवाद का साधन नहीं, बल्कि राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आधारशिला है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की पत्रकारिता वास्तव में भारतीय समाज–सुधार और राष्ट्रीय जागरण के इतिहास का एक स्वणिज़्म अध्याय है। उनकी लेखनी केवल विचार–प्रदशज़्न का साधन नहीं थी, बल्कि वह जनता के हृदय में उत्साह, कर्तव्य–बोध और उच्च आदर्शों की ज्योति जलाने का दिव्य माध्यम थी। उनका उद्देश्य था—समाज के हर वर्ग तक सत्य की आवाज पहुँचाना, भ्रान्तियों और आडम्बरों को चुनौती देना तथा राष्ट्र को आत्मबल से सम्पन्न करना।

उनके पत्र 'प्रचारक' की सामग्री पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होता है कि यह केवल धार्मिक पत्र नहीं था, बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय आन्दोलन का एक सशक्त उपकरण था। पहले ही वर्ष में इस पत्र ने 205 सम्पादकीय, 36 विशेष लेख, 45 आलोचनात्मक लेख, 5 जीवन–चरित्र और 52 वेदमन्त्रों की व्याख्याएँ प्रस्तुत करके अपने समय के हर महत्वपूर्ण विषय को छू लिया। इन लेखों में स्त्री–शिक्षा, अनाथ बच्चों की रक्षा, जनाना बोडिंज़्ग हाउस, उपदेशकों की आवश्यकता, दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज जैसे विषयों पर गम्भीर विमर्श हुआ। पत्र के लेखों में स्त्रियों की स्थिति सुधारने पर विशेष बल दिया गया। 'अधूरा इंसाफ' जैसी लेखमालाएँ स्त्री–आन्दोलन की नींव रखने में सहायक सिद्ध हुईं। यही कारण है कि जालन्धर का सुप्रसिद्ध कन्या महाविद्यालय, उस समय की इस पत्रकारिता का प्रत्यक्ष परिणाम माना जा सकता है। बाल–विवाह, विवाह–पूर्व सगाई, स्त्रियों में बाल गूँथने की रीति, विवाह में चूड़ा पहनना, 'साया–चिट्ठी' की परम्परा और 'जो राजा नाई कहे वही प्रमाण' जैसी रूढ़ियों पर प्रहार करके स्वामी जी ने छोटे–छोटे सुधारों की नींव भी दृढ़ की।

'प्रचारक' में केवल सामाजिक सुधार ही नहीं, बल्कि धार्मिक विवेचन और वैदिक आदर्शों की पुनर्प्रतिष्ठा का भी प्रयास हुआ। हकीकतराय, गुरु तेगबहादुर और गुरु

गोविन्दसिंह जैसे बलिदानियों के जीवन-चरित्र प्रकाशित कर समाज में त्याग और बलिदान की भावना जगाई गई। देवसमाज और केशवानन्द जैसे विरोधियों द्वारा किये गये आक्षेपों का गम्भीरता और तर्क के साथ निराकरण भी इस पत्र के माध्यम से हुआ। उनकी पत्रकारिता ने जाति-पाँति पर आधारित जन्मगत ऊँच-नीच का खण्डन कर गुण, कर्म और स्वभाव पर आधारित वर्ण-व्यवस्था का समर्थन किया। मांस-भक्षण के विरोध, रासलीला की कुप्रवृत्तियों, स्त्रियों के अश्लील गीतों और भगवा-वेषधारी पाखण्डी साधुओं की आलोचना करते हुए उन्होंने समाज को शुद्ध आचरण और ब्रह्मचर्य की ओर प्रेरित किया।

एक अन्य महत्वपूणज़ पक्ष था भाषा का। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने हिन्दी और देवनागरी को सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा बनाने का आह्वान किया। उन्होंने अदालती भाषा के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित करने पर भी जोर दिया। उनके लिये भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक पुनजाज़गरण का प्रमुख स्तम्भ थी। पत्रकारिता के इसी क्रम में उन्होंने आर्यसमाज के धनी पदाधिकारियों और शिक्षित वगज़ की आचारहीनता को भी नहीं छोड़ा। नाच, शराब, पिण्डदान जैसी कुप्रवृत्तियों की तीव्र निन्दा करते हुए उन्होंने यह दिखा दिया कि सुधारक की लेखनी किसी भी व्यक्ति या वर्ग के दोषों को बिना संकोच उजागर कर सकती है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का व्यक्तित्व केवल एक क्रान्तिकारी साधु, शिक्षाविद् या समाजसुधारक तक सीमित नहीं था, बल्कि वे एक सिद्धहस्त लेखक और निर्भीक पत्रकार भी थे। आर्यसमाज में प्रवेश के समय से लेकर 1892 ई. तक उन्होंने 'सद्धर्म प्रचारक' में 'आप बीती और जगत बीती' जैसे स्तम्भों के माध्यम से लेखन कार्य किया और जनता के समक्ष धर्म, समाज और राष्ट्र से जुड़े प्रश्नों को सजीवता और निर्भीकता के साथ प्रस्तुत किया।

पत्रकारिता के क्षेत्र में आर्यसमाज का योगदान विशेष महत्व रखता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्वयं अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं की प्रेरणा दी थी। उसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए स्वामी श्रद्धानन्द ने 'सद्धर्म प्रचारक', 'सत्यवादी', 'श्रद्धा' और 'लिबरेटर' जैसे पत्रों का प्रकाशन किया। इन पत्रों का उद्देश्य केवल धार्मिक प्रचार तक सीमित नहीं था, बल्कि शिक्षा-सुधार, सामाजिक जागरण और राजनीतिक क्रान्ति को भी गति प्रदान करना था। वास्तव में, उस समय देश के नवजागरण में पत्रकारिता से अधिक समर्थ और प्रभावी कोई अन्य माध्यम नहीं था।

स्वामी श्रद्धानन्द की पत्रकारिता में वैचारिक स्पष्टता, अभिव्यक्ति की तीव्रता और विषय चयन की व्यापकता थी। यही कारण था कि उनकी लेखनी ने हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता दोनों की सेवा की। हिन्दी लेखक श्री क्षेमचन्द्र सुमन ने ठीक ही लिखा है—

''आर्य समाज के माध्यम से हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता की जो सेवा हुई, वह इतनी महत्वपूर्ण है कि उसके उल्लेख के बिना साहित्य और पत्रकारिता का इतिहास ही अधूरा रह जाता है।''

उनकी पत्रकारिता को हिन्दी साहित्यकारों और राजनीतिज्ञों ने समान रूप से सराहा। कवि मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे साहित्यकार तथा लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, महात्मा गाँधी, लाला लाजपत राय और काका कालेलकर जैसे राजनेता उनके प्रबल प्रशंसकों में थे। उनकी पत्रकारी दृष्टि केवल प्रमुख हस्तियों तक सीमित नहीं रही; उन्होंने उन साहित्यकारों का भी उल्लेख किया जिन्हें बड़े साहित्येतिहासकारों ने उपेक्षित किया था। इसका उदाहरण 18 फरवरी 1921 की 'श्रद्धा' की टिप्पणी है, जिसमें उन्होंने हिन्दी कवि पीर मुहम्मद युनूस के निधन पर शोक व्यक्त किया। एक मुसलमान कवि की हिन्दी-सेवा पर श्रद्धांजलि अपिज़्त करना उस युग में उनकी उदार और सर्वसमावेशी दृष्टि का परिचायक था।

पत्रकारिता ने न केवल उनके विचारों को व्यापक समाज तक पहुँचाया, बल्कि उन्हें सुव्यवस्थित भी किया। यही कारण था कि 1909 ई. में उन्होंने 'सद्धर्म प्रचारक प्रेस' गुरुकुल को भेंट कर दी। इसके बाद गुरुकुल कांगड़ी का समस्त मुद्रण और प्रकाशन का कार्य उसी प्रेस द्वारा सम्पन्न होने लगा। इस दान के पीछे उनका उद्देश्य था—आर्यसमाज और राष्ट्र के सांस्कृतिक तथा शैक्षिक आन्दोलन को स्थायी आधार प्रदान करना।

महात्मा मुंशीराम केवल एक संन्यासी या समाज-सुधारक ही नहीं थे, बल्कि वे आधुनिक भारत में राष्ट्रीय चेतना के अद्‌भुत प्रवक्ता और पत्रकारिता के सशक्त प्रतिनिधि भी सिद्ध हुए। यदि वे गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना न करते, तो सम्भवत: हिन्दी पत्रकारिता का वर्तमान रूप वह न होता, जैसा हम आज देख रहे हैं। गुरुकुल से निकलने वाले स्नातकों ने लेखन और पत्रकारिता दोनों क्षेत्रों में जो योगदान दिया, उसने भारत की राष्ट्रीय धारा को समृद्ध किया।

स्वामी श्रद्धानन्द का पत्रकारिता जीवन वास्तव में उनके सार्वजनिक जीवन का प्रस्थान-बिन्दु था। उन्होंने सन् 1889 ई. के आसपास 'सद्धर्म प्रचारक' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह वह समय था जब देश के विभिन्न भागों में जागरण की लहर उठ रही थी। लोकमान्य तिलक का 'केसरी', पं. बालमुकुन्द गुप्त का 'भारत मित्र', पं. माधवराव नीलकण्ठ का 'इंडियन मिरर' और 'ट्रिब्यून' जैसे अनेक पत्र राष्ट्रीय चेतना के प्रचारक बन चुके थे। श्रद्धानन्द जी के लिए लोकमान्य तिलक आदर्श थे। तिलक ने अपने लेखन में जिस प्रकार शक्ति, उत्साह और क्रान्ति की ज्वाला

प्रवाहित की थी, वही प्रेरणा श्रद्धानन्द जी के हृदय में उतर गई। वे भी मानते थे कि पत्रकारिता का कार्य केवल सूचना देना या शासन के आदेशों को प्रकाशित करना नहीं है, बल्कि जनता के हृदय में ऊजाज़ और आत्मविश्वास का संचार करना है।

'सद्धर्म प्रचारक' का आरम्भिक प्रकाशन उर्दू में हुआ था। किन्तु एक दिन किसी ने व्यंग्य करते हुए कहा—''स्वामी दयानन्द के शिष्य होकर उर्दू में पत्र निकालते हो?'' इस व्यंग्य ने उनके अन्तर्मन को झकझोर दिया। उन्हें लगा कि जब स्वामी दयानन्द गुजराती होते हुए भी हिन्दी में अमूल्य ग्रन्थ लिख सकते हैं, तो वे स्वयं हिन्दी का त्याग कैसे कर सकते हैं? परिणामस्वरूप 1 मार्च 1907 को 'सद्धर्म प्रचारक' ने हिन्दी भाषा का अंगीकार कर लिया। यह निर्णय केवल भाषायी परिवर्तन नहीं था, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का एक ऐतिहासिक कदम था। यद्यपि पत्र पहले से ही घाटे में चल रहा था और मित्रों ने उन्हें समझाया भी कि ''पंजाब में तो हिन्दी केवल स्त्रियाँ ही पढ़ती है'', लेकिन उनका उत्तर था—''देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। इसके प्रचार-प्रसार में त्याग और बलिदान करना ही हमारा धर्मं है।'' वास्तव में यह निश्चय उनके राष्ट्रभक्ति और दृढ़ संकल्प का प्रतीक था।

गुरुकुल कांगड़ी के आरम्भ होने के बाद 'सद्धर्म प्रचारक' और उसका प्रेस हरिद्वार ले जाया गया। 1902 ई. में जालन्धर से इसका अन्तिम अंक निकला और फिर गुरुकुल से इसका पुन: प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। आगे चलकर यह दिल्ली स्थानान्तरित हुआ, किन्तु उसके इतिहास में कई कठिनाइयाँ भी आईं। संवत् 1969 (1912 ई.) के लगभग प्रेस में भयंकर आग लग गई। मशीनें, कागज और टाइप सब नष्ट हो गए। यह प्रेस उत्तर भारत के बड़े और आधुनिक प्रेसों में गिना जाता था, अत: यह क्षति बहुत गम्भीर थी। एक समय ऐसा भी आया कि पत्र और प्रेस दोनों का अस्तित्व संकट में पड़ गया। किन्तु श्रद्धानन्द जी ने हार नहीं मानी। उन्होंने प्रेस को 'आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब' को समपिज़्त कर दिया और किसी न किसी रूप में 'सद्धर्म प्रचारक' का प्रकाशन जारी रखा।

सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना से देश में राजनीतिक चेतना का अंकुर फूटा, परन्तु उस समय उसका स्वरूप अधिकतर सामाजिक और सांस्कृतिक था। किन्तु लोकमान्य तिलक के राजनीतिक मंच पर आगमन के साथ ही उपनिवेशवादी शोषण के विरुद्ध स्वर तीव्र और प्रखर हुआ। यही वह काल था जब हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य में स्वदेशीवाद तथा राष्ट्रवाद का प्रबल प्रचार प्रारम्भ हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द जी इस परिवर्तनशील काल में तिलक से सर्वाधिक प्रभावित हुए। यही कारण है कि उनके 'सद्धर्म प्रचारक' में धार्मिक और शैक्षिक विषयों के साथ-साथ तिलक के

राष्ट्रीय मन्तव्यों पर भी विस्तृत टिप्पणियाँ दिखाई देती हैं।

'सद्धर्म प्रचारक' केवल एक आर्यसमाजी पत्र ही नहीं था, बल्कि यह जनता के लिए राष्ट्रीय चेतना का घोषपत्र भी था। इसे पढ़ने के लिए लोगों ने हिन्दी सीखना शुरू किया। इस पत्र के द्वारा आर्यसमाज की सार्वभौम नीतियाँ जनता तक पहुँचीं और साथ ही महात्मा मुंशीराम की वैचारिक छाप भी। संन्यास लेने के बाद भी उनका मार्गदर्शन इस पत्र में झलकता रहा। बाद में जब उनके सुपुत्र इन्द्रजी राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय हुए, तब पत्र में राजनीतिक स्वर और भी मुखर हुआ।

पत्रकारिता की इस सशक्त परम्परा से प्रेरित होकर गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे तपस्वी पत्रकार स्वयं गुरुकुल आकर उनसे मिले। 'संसार की गति' नामक कॉलम में तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक घटनाओं का सम्यक् विवेचन किया जाता था, जो जनता को घटनाओं के प्रति सजग बनाता था। किन्तु 1922 ई. में परिस्थितियोंवश यह पत्र बन्द करना पड़ा। इसके बावजूद स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने जीवन में स्वतंत्र पत्रकारिता के मापदण्ड स्थापित कर दिये थे। बाद में उनके सुयोग्य पुत्रों—हरीशचन्द्र विद्यालंकार और इन्द्र वेदालंकार (जो आगे चलकर इन्द्र विद्यावाचस्पति कहलाए)— ने इस पत्र के सम्पादन में वही तप, वही राष्ट्रनिष्ठा और वही त्याग बनाये रखा। दिल्ली में जब प्रबन्धकीय दबावों के कारण 'सद्धर्म प्रचारक' का प्रकाशन असम्भव हुआ, तब इसकी सूचना में दृढ़ता से लिखा गया— "प्रचारक जब तक निकलेगा, जीवित रूप में निकलेगा, मरकर निकलने से राख हो जाना अच्छा है।" यह वाक्य वास्तव में श्रद्धानन्द की अदम्य पत्रकारिता-चेतना और उनकी स्वतंत्रता-प्रियता का उद्घोष था।

यद्यपि बाद में कुछ महानुभावों ने इसे पुनः निकालने का प्रयास किया, किन्तु उसकी आत्मा मर चुकी थी। यही कारण था कि वह प्रयास स्थायी न हो सका। इस दुर्दशा से महात्मा मुंशीराम का हृदय अत्यन्त व्यथित हुआ। संन्यास ग्रहण करने के बाद उन्होंने पीड़ा के स्वर में लिखा— "अच्छा होता यदि जब प्रेस आर्यप्रतिनिधि सभा ने बेचना चाहा था, उस समय खरीददार को 'सद्धर्म प्रचारक' नाम रखने न दिया जाता। उसका परिणाम यह हुआ कि जिस उद्देश्य से यह पत्र आरम्भ किया गया था, उन्हीं साधनों द्वारा उसका खण्डन हुआ।"

इन शब्दों में स्वामी श्रद्धानन्द की गहन मर्म-पीड़ा और पत्रकारिता की पवित्रता के प्रति उनकी अटूट निष्ठा स्पष्ट झलकती है। उन्होंने समाचारपत्र को केवल सांसारिक साधन नहीं, बल्कि राष्ट्रोत्थान का साधन माना था। यही कारण है कि 'सद्धर्म प्रचारक' भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में आज भी स्वतंत्र और निर्भीक अभिव्यक्ति का प्रतीक माना जाता है।

स्वामी श्रद्धानन्द ने आयज़ समाज के सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार और समाज सुधार के कार्य को गतिशील बनाने के लिए पत्रकारिता को एक सशक्त साधन बनाया। इसी उद्देश्य से उन्होंने 'सद्धर्मप्रचारक' नामक पत्र का संचालन किया, जिसे उन्होंने एक साधारण पत्र न मानकर एक 'पाठक परिवार' के रूप में स्थापित किया। वे बार-बार अपने पाठकों को यह स्मरण कराते थे कि यह परिवार सदा अधर्म का विरोध करने और धर्म की सहायता करने के लिए जाना जाता है। स्वामीजी ने धर्म की सार्वभौमिकता पर विशेष बल दिया और कहा कि वैदिक धर्म केवल मनुष्य जाति ही नहीं, बल्कि समस्त प्राणिमात्र को प्रेम के सूत्र में बाँधने वाला है। इसीलिए वह जातीय विभाजन, वर्ण-भेद और काले-गोरे के भेदभाव का विरोध करता है।

समय की पृष्ठभूमि में देखें तो उस काल में अफ्रीका के गोरे निवासी रंगभेद को लेकर विद्वेष की आग भड़का रहे थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने इस प्रसंग को उठाकर अपने पाठक परिवार से प्रश्न किया कि क्या धर्म के पथ पर चलने वाला यह परिवार इस संकट के समय पीछे हट जाएगा? और उन्होंने विश्वास प्रकट किया कि ऐसा कभी नहीं होगा। यह दृष्टांत स्पष्ट करता है कि श्रद्धानन्दजी की पत्रकारिता केवल धामिज़्क विचारों तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह वैश्विक स्तर पर उभरती समस्याओं पर भी विचार प्रस्तुत करती थी।

'सद्धर्मप्रचारक' का आरम्भ उदूज़ भाषा और फारसी लिपि में हुआ। उस समय पंजाब में आर्यभाषा का लिखना-पढ़ना दुर्लभ था। यहाँ तक कि संस्कृत के साधारण शब्द भी आर्य समाजियों और सनातनियों के लिए कठिन थे। देवनागरी लिपि को पहचानने वाले भी मुश्किल से मिलते थे। इस कठिन परिस्थिति में 'प्रचारक' ने एक विशेष स्थान बनाया। धीरे-धीरे इस पत्र ने सहस्रों लोगों को इस योग्य बना दिया कि वे वेद और सत्यशास्त्रों के विचारों को समझ सकें।

संवत् 1963 के फाल्गुन मास में जब 'सद्धर्मप्रचारक' ने उर्दू का चोला उतारकर हिन्दी और देवनागरी में प्रकाशित होना प्रारम्भ किया तो उस अवसर पर 'नया जन्म, नयी आशाएँ' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया कि भाषा और लिपि बदल गई है, किन्तु प्रचारक की आत्मा, उसकी स्पिरिट वही है। सत्य का निर्भीक प्रचार, अनाचार का खण्डन और असत्य का प्रतिकार—ये सब कार्य उसी प्रकार होते रहेंगे। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि 'प्रचारक' ने अपने नये जीवन में गन्दे और अशोभनीय विज्ञापनों से स्वयं को अलग रखा और अपने सहयोगियों को भी ऐसा करने की प्रेरणा दी।

'प्रचारक'* का सबसे बड़ा योगदान हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार में रहा। बहुत से आर्य समाजियों ने केवल इस पत्र को पढ़ने के लिए ही हिन्दी

सीखने का प्रयास किया। ऐसे लोग भी तैयार हुए जो लिखना तो नहीं जानते थे, पर हिन्दी पढ़ सकते थे। इस दृष्टि से कहा जाता है कि आर्य भाषा को जीवित और लोकप्रिय बनाने का अधिकांश श्रेय 'सद्धर्मप्रचारक' को है।

स्वामी श्रद्धानन्द का पत्रकार व्यक्तित्व केवल धार्मिक या सांस्कृतिक मुद्दों तक सीमित नहीं था। उन्होंने राजनीतिक प्रश्नों पर भी निर्भीकतापूर्वक विचार प्रकट किए। इसका स्पष्ट उदाहरण 21 मई 1920 को 'श्रद्धा' पत्र में प्रकाशित उनका वह लेख है, जिसमें पंडित जवाहरलाल नेहरू को मसूरी से निष्कासित किए जाने की घटना का उन्होंने तीव्र विरोध किया। उन्होंने नेहरू को एक शान्त स्वभाव वाला सच्चा देशभक्त बताया और कहा कि यह केवल एक नेता का नहीं, बल्कि पूरी जाति का घोर अपमान है। साथ ही उन्होंने भारत रक्षा कानून के इस प्रयोग को अनुचित और जबरदस्ती ठहराते हुए इसके विरुद्ध देशव्यापी आन्दोलन की आवश्यकता पर बल दिया।

स्वामी जी ने सन् 1970 में भागलपुर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन में अपने उद्‌बोधन में बताया कि 'सद्धर्मप्रचारक' का प्रारम्भ उर्दू भाषा और फारसी लिपि में हुआ था। उस समय उनके मन में पहले से ही यह विचार था कि इसे हिन्दी में प्रकाशित किया जाना चाहिए। उर्दू में निकलते समय भी उन्होंने पत्र में संस्कृत और हिन्दी शब्दों का अधिकतम प्रयोग किया ताकि भाषा सरल और सभी के लिए सुगम हो। इस प्रकार 'प्रचारक' का सम्पादन इस तरह किया गया था कि महिलाएँ इसे पढ़ने में तनिक भी संकोच न करें। पत्र की शालीनता इतनी थी कि न केवल लेखों में, बल्कि विज्ञापनों में भी अश्लीलता का स्थान नहीं था।

स्वामी जी ने अपने पाठकों को यह सूचना भी दी थी कि यदि पत्र के 500 ग्राहक हो जाएँ तो इसे हिन्दी में प्रकाशित किया जाएगा। यद्यपि आवश्यक संख्या न होने पर भी उन्होंने ईश्वर पर विश्वास रखते हुए इसे हिन्दी में प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। इसका परिणाम अत्यन्त सफल रहा और आज 'सद्धर्मप्रचारक' के पाठकों की संख्या पर्याप्त है।

इस पत्र की महत्ता और प्रभाव का प्रमाण लाला लाजपत राय ने भी दिया। उन्होंने लिखा— ''श्री मुंशीराम जी का पत्र अपने निकलने के पहले दिन से ही आर्य समाज के क्षेत्र में अच्छा काम करता रहा और लोकप्रिय रहा है। श्री मुंशीराम जी की लेखनी में बल था।''

स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वयं ही पत्रकारिता को जीवन का अंग नहीं बनाया बल्कि अपने पुत्रों को भी इस मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उनके पुत्र इन्द्र विद्यावाचस्पति ने 1912 में दिल्ली से 'विजय' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह दिल्ली का पहला हिन्दी साप्ताहिक था, जो शुद्ध राजनीतिक और सामाजिक विषयों

पर आधारित था। 1918 में 'विजय' दैनिक रूप में प्रकाशित होने लगा। सीमित साधनों के बावजूद इसने अंग्रेजी पत्रों से मुकाबला किया और उत्तर भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य पत्र बना। सरकार ने उसके उग्र राजनीतिक स्वर के कारण जमानत माँगी, किन्तु आर्थिक तंगी के कारण 1927 में पत्र को बन्द करना पड़ा। 'विजय' में इन्द्र जी ने अपने प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य स्तम्भ 'वीणा की झंकार' की भी शुरुआत की।

स्वामी श्रद्धानन्द मानते थे कि 'प्रचारक' उनके जीवन का उतना ही बड़ा कार्य है जितना कि गुरुकुल की स्थापना। गुरुकुल के स्वप्न को साकार करने में 'प्रचारक' मुख्य साधन सिद्ध हुआ। इसकी फाइल उनके जीवन के उतार-चढ़ाव और संघषज़् की पूरी गाथा का दस्तावेज है। इन्हीं दिनों स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने लिए 'जिज्ञासु' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ किया। संन्यास ग्रहण करने तक वे बराबर इस उपनाम का उपयोग करते रहे। यह नाम उनके जीवन के लिए अत्यन्त साथज़्क था, क्योंकि वे निरन्तर सत्य की खोज और ज्ञान की जिज्ञासा से प्रेरित रहे।

स्वामी श्रद्धानन्द ने सन् 1920 में 'श्रद्धा' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह पत्रिका उनके संपादन में प्रकाशित हुई और इसका उद्देश्य स्वयं उनके शब्दों में स्पष्ट किया गया है— ''मैं देवनागरी लिपि को संसार की सब लिपियों का स्रोत और स्वाभाविक समझता हूँ। इसलिए इस 'श्रद्धा' के साप्ताहिक दूत को उसी लिपि के द्वारा पाठकों तक भेजूँगा। समय की भाषा अंग्रेजी होने के कारण तुम्हारा साप्ताहिक संदेश देश के बड़े विचारक वर्ग तक न पहुँच सके, यह प्रश्न हो सकता है। परन्तु मेरा मन साक्षी देता है कि यदि मेरे पास वास्तविक संदेश नहीं तो अंग्रेजी द्वारा भी कोई न सुनेगा, और यदि संदेश है तो अंग्रेजी वणोज़्ं में उसे समझने में बाधा होगी।''

स्वामी श्रद्धानन्द ने 'श्रद्धा' के माध्यम से हिन्दी भाषा के प्रचार और शिक्षा-सुधार के विचार प्रस्तुत किए। इसमें शिक्षा, नैतिकता, समाज सुधार और वैदिक आदर्शों पर अनेक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए। दुर्भाग्यवश, यह पत्रिका केवल दो वर्ष तक ही जारी रह सकी, किन्तु इसके द्वारा प्रस्तुत विचार और दिशा ने समाज पर स्थायी प्रभाव छोड़ा।

स्वामी श्रद्धानन्द ने 'श्रद्धा' में राजनीतिक मामलों पर भी निर्भीक रूप से अपनी राय व्यक्त की। उदाहरण स्वरूप, उन्होंने चिन्तामणि द्वारा महात्मा गांधी के सत्याग्रह पर किए गए प्रहार की आलोचना की। 21 मई 1920 को 'श्रद्धा' में उन्होंने लिखा कि संयुक्त प्रान्त के एकमात्र मॉडरेट पत्र में गांधी और उनके सहयोग, त्याग पर ऐसा स्वर प्रकट हुआ, जो गोरेशाही के हित में पत्रों के स्वर से मेल खाता था।

स्वामी जी ने स्पष्ट किया कि चिन्तामणि के लेख का उद्देश्य केवल भारत की नौकरशाही की हित-चिन्ता नहीं, बल्कि गांधीजी की सत्यनीति को सहन न करना

था। उन्होंने कहा कि ऐसा प्रयास पहले पंजाब के अत्याचारों के विरुद्ध चल चुकी कलम से उत्पन्न हुआ था, जिसे चिन्तामणि ने गलत ढंग से प्रस्तुत किया। उन्होंने इसे सत्य और न्याय के प्रति अनुचित दृष्टिकोण बताया और पाठकों को जागरूक किया।

'श्रद्धा' में स्वामी श्रद्धानन्द ने शिक्षा के सावज़्भौम आदशोज़् पर भी प्रकाश डाला। उन्होंने लिखा— "यह निर्विवाद सच्चाई है कि सब मनुष्य समान शक्तियाँ और समान प्रकृति लेकर नहीं जन्म लेते। यही दलील पुनर्जन्म के लिए है। भिन्न रुचियों और भिन्न शक्तियों वाले मनुष्य के लिए शिक्षा में भी भेद होना चाहिए, ताकि वे अपने कर्मों के अनुसार जीवन में सफल हो सकें।"

स्वामी जी के अनुसार, संसार में जो उच्च कोटि के कार्य—जैसे कविता, शिक्षा, उपदेश, राजशासन—हैं, उनका बीज व्यक्ति में जन्म के समय ही विद्यमान होता है। ये शक्तियाँ अनेक जन्मों के साधनों से विकसित की जा सकती हैं। वेद में भी यही आदर्श प्रस्तुत है कि आचार्य में यह मानसिक बल होना चाहिए कि वह अपने शिष्य की स्वाभाविक रुचि और क्षमता को समझकर उसी के अनुसार शिक्षा प्रदान करे। यही कारण था कि प्राचीन भारत में गुरुकुल और ब्रह्मचर्याश्रम की परंपरा चली।

स्वामी श्रद्धानन्द ने इस परंपरा को अपने जीवन में साकार किया। उन्होंने ऋषि दयानन्द के आदेश का पालन करते हुए कांगड़ी ग्राम में गुरुकुल की स्थापना की, जो शिक्षा के सुधार और मानव कल्याण का केंद्र बना। 'श्रद्धा' पत्रिका इसी आदर्श और दृष्टिकोण की पैरोकार थी, जिसमें शिक्षा के सार्वभौमिक नियमों और नैतिक मूल्यों का निरंतर प्रचार किया गया।

स्वामी श्रद्धानन्द ने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के निधन पर 'श्रद्धा' पत्र में 6 अगस्त 1920 को प्रकाशित आलेख 'राजनीति का सूर्यास्त' में अपनी गहन संवेदनाएँ और राजनीतिक दृष्टिकोण व्यक्त किए। इस लेख में उन्होंने तिलक के प्रति अपनी श्रद्धा और सम्मान प्रकट किया, साथ ही भारत की राजनीति पर उनके प्रभाव को स्पष्ट किया।

स्वामीजी ने लिखा कि तिलक का योगदान केवल व्यक्तित्वगत या सीमित राजनीतिक दृष्टि तक सीमित नहीं था। वे राजनीति को जनता तक पहुँचाने वाले अग्रणी नेता थे। तिलक ने इंग्लैंड में पढ़े-पढ़ाए पुस्तकों और लेखों के माध्यम से उपलब्ध राजनीतिक ज्ञान को सीधे जनता—किसानों की झोंपड़ियों और मजदूरों की गोष्ठियों तक पहुँचाया। 'केसरी' पहला ऐसा राजनीतिक समाचार पत्र था जिसे आम जनता पढ़ने लगी। इसके अलावा, गणपति पूजा के माध्यम से जनता को एकजुट किया गया और राजनीतिक चेतना का संचार हुआ।

स्वामीजी ने तिलक की रूढ़िवादी प्रवृत्ति की ओर भी संकेत किया। उन्होंने

अपनी बेबाक टिप्पणी में लिखा कि तिलक के पुत्र ने अपने पिता के प्रायश्चित को नापसंद किया। 9 जुलाई 1920 को 'श्रद्धा' में उन्होंने इस पर टिप्पणी की— ''विदेश यात्रा के लिए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के प्रायश्चित के विरोध में हम 'श्रद्धा' के पिछले अंक में लिख चुके हैं। अब सहभागी 'वन्देमातरम्' द्वारा ज्ञात हुआ है कि तिलकजी के सुपुत्र ने 'इन्दु प्रकाश' में एक पत्र छपवाकर यह उद्घोष किया है कि मैं अपने पिता के प्रायश्चित को सर्वथा नापसन्द करता हूँ। '**यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि**' इस उपनिषद् का क्रियात्मक उदाहरण है।''

'श्रद्धा'* में स्वामीजी ने अनेक सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर नियमित रूप से टिप्पणी की। इसमें प्रमुख विषय रहे— तुर्की विजय, स्वदेशी का प्रचार, पाश्चात्यों की मानसिकता, गौवध निषेध, राजनीतिक स्वतंत्रता और राष्ट्रीय चेतना। उनके लेखन की समयावधि (अप्रैल 1920 से अक्टूबर 1920) में प्रकाशित मुख्य टिप्पणियाँ निम्नलिखित हैं: 30 अप्रेल, 1920, 7 मई, 1920, 14 मई, 1920, 21 मई, 1920, 28 मई, 1920, 4 जून, 1920, 18 जून, 1920, 25 जून, 1920, 2 जुलाई, 1920, 9 जुलाई, 1920, 16 जुलाई, 1920, 23 जुलाई, 1920, 30 जुलाई, 1920, 13 अगस्त, 1920, 20 अगस्त, 1920, 24 सितम्बर 1920, 1 अक्टूबर, 1920, 8 अक्टूबर, 1920।

इन लेखों के माध्यम से स्वामी श्रद्धानन्द ने स्पष्ट किया कि उनकी पत्रकारिता केवल समाचार या सूचना देने का माध्यम नहीं थी, बल्कि यह सामाजिक जागरूकता, नैतिकता, शिक्षा और राजनीतिक चेतना का एक सशक्त साधन थी।

स्वामी श्रद्धानन्द भारतीय समाज सुधारक, शिक्षा-सुधारक और राष्ट्रीय चेतना के अग्रणी व्यक्तित्व थे। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का सबसे स्पष्ट प्रमाण उनकी पत्रकारिता में दिखाई देता है। उनके द्वारा संपादित पत्रिकाएँ और प्रकाशन— सद्धर्मप्रचारक, श्रद्धा, विजय और द लिबरेटर के माध्यम से उन्होंने शिक्षा, सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय चेतना और धामिज़्क मूल्यों का प्रचार किया।

सद्धर्मप्रचारक को स्वामी श्रद्धानन्द ने केवल पत्र न मानकर एक पाठक परिवार के रूप में स्थापित किया। उनका उद्देश्य हमेशा अधर्म का विरोध करना और धर्म का पक्ष लेना था। प्रारंभ में यह पत्र उर्दू में प्रकाशित होता था, परन्तु स्वामी जी ने इसमें संस्कृत और हिन्दी के शब्दों का प्रयोग किया ताकि यह भाषा सरल और सभी के लिए सुगम हो। उन्होंने इसे इस प्रकार सम्पादित किया कि महिलाएँ भी इसे पढ़ने में संकोच न करें, और विज्ञापनों में अश्लीलता का कोई स्थान न हो।

स्वामी जी ने ईश्वर पर भरोसा रखते हुए इसे हिन्दी में भी प्रकाशित करना आरम्भ किया। पत्र ने पाठकों का विश्वास और लोकप्रियता अर्जित की, जिससे

आर्यभाषा को विकसित करने में सद्धर्मप्रचारक की विशेष भूमिका रही। लाला लाजपत राय ने भी इसे आर्य समाज में महत्वपूर्ण और प्रभावशाली पत्र बताया।

सन् 1920 में स्वामी जी ने 'श्रद्धा' पत्रिका का प्रकाशन किया। इसका उद्देश्य देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा में शिक्षा और समाज सुधार के विचारों का प्रचार था।

स्वामी जी ने शिक्षा के सार्वभौम आदर्शों पर जोर दिया। उनका मत था कि मनुष्य समान शक्तियों के साथ नहीं जन्मता, इसलिए शिक्षा में भिन्नता आवश्यक है। आचार्य को शिष्य की स्वाभाविक रुचि और शक्ति के अनुसार पाठ विधि तय करनी चाहिए। इसी दृष्टि से भारत में गुरुकुल और ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित किए गए।

श्रद्धा में स्वामी जी ने गांधीजी, तिलक, राष्ट्रीय आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, छुआछूत और सामाजिक सुधार जैसे विषयों पर बहुआयामी और तटस्थ विचार प्रकाशित किए। उन्होंने स्पष्ट किया कि सामाजिक सुधार और शिक्षा केवल औपचारिक ज्ञान तक सीमित नहीं, बल्कि नैतिकता, मानवता और धर्म का प्रचार होना चाहिए।

स्वामी जी ने अपने पुत्र इन्द्र विद्यावाचस्पति को पत्रकारिता में सक्रिय प्रेरित किया। इन्द्र जी ने 1912 में दिल्ली से 'विजय' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया, जो दिल्ली का पहला हिन्दी साप्ताहिक था।

1918 में इसे दैनिक पत्र बनाया गया। यह उत्तर भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का प्रमुख माध्यम बना। सीमित साधनों के बावजूद यह पत्र अंग्रेजी समाचार पत्रों से प्रतिस्पर्धा करता रहा। इन्द्र जी ने इस पत्र में अपने प्रसिद्ध हास्य–व्यंग्य स्तम्भ 'वीणा की झंकार' की शुरुआत भी की।

स्वामी जी ने अंग्रेजी में 'द लिबरेटर' पत्रिका प्रकाशित की, जो उनके राजनीतिक विचारों और अनुभवों का संग्रह थी। इसका पहला अंक 1 अप्रैल 1926 में प्रकाशित हुआ और अंतिम अंक अक्टूबर 1926 में आया। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने 1888–1922 तक के राष्ट्रीय आंदोलन का जीवंत विवरण प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने रोलेट एक्ट, कांग्रेस की नीतियों, अछूतोद्धार, शिक्षा, शराब विरोध, स्वराज्य, गांधीजी के सत्याग्रह आदि पर संपादकीय टिप्पणियाँ दीं। जिनके प्रमुख विषय जैसे- हिन्दू महासभा में अस्पृश्यता का प्रस्ताव, शिक्षा का माध्यम, अछूतों का उत्पीड़न, कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन, महात्मा गांधी एवं सत्याग्रह, दलित–उद्धार और सामाजिक सुधार, गुरुकुल की रजत जयन्ती, विधवा–विवाह और छुआछूत, शराब विरोध और ग्रामीण उत्थान हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द की पत्रकारिता केवल सूचना का माध्यम नहीं थी। यह शिक्षा, नैतिकता, सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय चेतना और धर्म का प्रचारक थी। उनकी पत्रिकाओं

ने हिन्दी और देवनागरी लिपि के विकास में योगदान दिया। शिक्षा और गुरुकुल प्रणाली के आदर्शों का प्रचार किया, राष्ट्रीय आंदोलन के अनुभवों और सत्याग्रह के महत्व को उजागर किया, समाज में छुआछूत, विधवा-विवाह और शराब जैसी बुराइयों का विरोध किया। उनकी पत्रकारिता ने पाठकों को केवल सूचित नहीं किया, बल्कि चेतन और सक्रिय नागरिक बनने की प्रेरणा दी।

स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में सामाजिक और राजनीतिक सुधार के लिए अंग्रेजी भाषा में साप्ताहिक पत्रिका 'दि लिबरेटर' का प्रकाशन किया। यह पत्रिका उनके अस्पृश्यता विरोधी दृष्टिकोण और राष्ट्रीय चेतना का सशक्त माध्यम थी। विशेष रूप से मद्रास प्रान्त, जहाँ अछूत-समस्या अत्यंत तीव्र थी, वहां के निवासियों के हृदय और मस्तिष्क तक पहुँचने के लिए उन्होंने इसे अंग्रेजी में प्रकाशित करने का निर्णय लिया।

पहले अंक में, जो 1 अप्रैल, 1926 को प्रकाशित हुआ, स्वामी जी ने ''कन्फैशन ऑफ माई आर्टिकल्स ऑफ फेथ'' शीर्षक से एक लेख लिखा। इस लेख में उन्होंने अनुभव साझा करते हुए कहा कि इसमें उन्होंने कहा था- ''मैं विगत दो वर्षों में मद्रास प्रान्त में घूमा हूँ और मैंने अनुभव किया है कि यदि मैं आंध्र (तेलुगु), तमिल, मलयालम तथा कन्नड़ भाषा-भाषी लोगों के हृदय तथा मस्तिष्क तक पहुंचना चाहता हूँ तो मुझे अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करना होगा।'' उनका मानना था कि मद्रास प्रान्त में विभिन्न भाषाओं—आंध्र (तेलुगु), तमिल, मलयालम और कन्नड़—के भाषी लोगों तक अपने विचार पहुँचाने के लिए अंग्रेजी का प्रयोग आवश्यक था। उनका उद्देश्य स्पष्ट था—सभी वर्गों और भाषाओं के लोगों तक राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक सुधार और धर्म का संदेश पहुँचाना।

'द लिबरेटर' में प्रकाशित एक अन्य संपादकीय टिप्पणी में पं. चिन्तामणि वैद्य ने गुरुकुल के स्नातकों को सम्बोधित करते हुए यह उल्लेख किया कि भारत के महाविद्यालयों में विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देना उचित नहीं है। उन्होंने स्पष्ट किया कि मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करना सरल और प्रभावशाली होता है, क्योंकि इसमें मानसिक शक्ति का अधिक उपयोग नहीं होता और विषय का ग्रहण सहजता से हो जाता है। स्वामी श्रद्धानन्द का यह दृष्टिकोण राष्ट्रभाषा के पक्ष में स्पष्ट संदेश था। वे मानते थे कि देश की भाषा—हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा और जागरूकता फैलाना ही सामाजिक और राष्ट्रीय उत्थान का मार्ग है।

महात्मा गाँधी ने 11 मार्च, 1926 को 'द लिबरेटर' के संबंध में लिखा कि यह पत्रिका विशाल योजना का भाग है, और यदि इसके उद्देश्य पूणज़ होते हैं तो स्वामी जी को इसके लिए ख्याति प्राप्त होगी। स्वामी जी का मूल लक्ष्य था कि भारत की 80

प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या शहरी अपसंस्कृति और विदेशी वस्त्र पहनने के प्रभाव से बची रहे। इसके लिए उन्होंने 'द लिबरेटर' के माध्यम से महात्मा गाँधी के चरखे के प्रयोग और स्वदेशी आंदोलन को आम जनता तक पहुँचाने का संकल्प लिया। 8 अप्रैल, 1926 को उन्होंने यह भी टिप्पणी लिखी कि पत्रिका के लेख और विचार गाँवों में चरखे के महत्व और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग की समझ बढ़ाएँगे, जिससे समाज में आथिज़्क और नैतिक सुधार संभव होगा।

'द लिबरेटर' में स्वामी श्रद्धानन्द ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और सामाजिक सुधारों पर भी विस्तृत लेखमाला प्रकाशित की। इसके तहत उन्होंने 26 लेख प्रकाशित किए, जिनमें पहला अंक 1 अप्रैल, 1926 को और अंतिम 28 अक्टूबर, 1926 को आया। इस दौरान उन्होंने अस्पृश्यता, शिक्षा, शराब निषेध, राष्ट्रीय आंदोलन और गांधीजी के सत्याग्रह जैसे विषयों पर स्पष्ट, ताकिज़्क और बहुआयामी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

स्वामी जी की यह पत्रिका राजनीतिक और सामाजिक सुधारों का प्रमाणिक दस्तावेज है। इसके माध्यम से उन्होंने अपने विचारों को केवल शहरी और अंग्रेजी भाषी पाठक तक सीमित नहीं रखा, बल्कि ग्रामीण जनता और विभिन्न भाषी समुदायों तक पहुँचाया।

स्वामी श्रद्धानन्द के देहांत के 20वीं वर्षगांठ पर, उनके प्रकाशित लेखों को संग्रहित कर पुस्तकाकार रूप दिया गया। बम्बई निवासी श्री पी.आर. लेले, जो 'द लिबरेटर' के संयुक्त संपादक थे, ने इन लेखों को स्वामी जी को श्रद्धांजलि के रूप में प्रकाशित किया। इस संग्रह के माध्यम से आज भी स्वामी जी की राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक सुधार और शिक्षा के प्रति दृष्टि का जीवंत अनुभव लिया जा सकता है।

स्वामी श्रद्धानन्द का राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण उनके अंग्रेजी साप्ताहिक पत्रिका 'द लिबरेटर' में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने न केवल राष्ट्रीय आंदोलन की नीतियों पर विचार व्यक्त किए, बल्कि अछूत-उद्धार और असहयोग आंदोलन जैसी सामाजिक समस्याओं पर भी गहन चिंतन प्रस्तुत किया।

स्वामी जी ने 'द लिबरेटर' में असहयोग आंदोलन के प्रभाव और उसकी सीमा का विश्लेषण करते हुए लिखा कि यह आंदोलन संक्षिप्त समय में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करने में सक्षम रहा। उन्होंने देखा कि दिल्ली में अपेक्षित सफलता न मिलने का मुख्य कारण स्थानीय कार्यकर्ताओं की रूचि की कमी थी। उनका मानना था कि यदि सविनय अवज्ञा आंदोलन को स्थगित नहीं किया जाता और कांग्रेस के नेता इस पर पूर्ण उत्साह के साथ ध्यान केंद्रित करते, तो असहयोग आंदोलन सफलता की चरम सीमा तक पहुँच सकता था। उन्होंने कांग्रेस की आंतरिक रणनीतियों और नेतृत्व की

भूमिका की गहन समीक्षा करते हुए यह भी बताया कि अन्य संस्थाओं के दरवाजे खटखटाने की आवश्यकता नहीं पड़ती और राजतंत्र इसे दबाने में असफल रहता।

स्वामी श्रद्धानन्द ने 'द लिबरेटर' के 27 मई, 1926 के अंक में अछूतों के लिए मन्दिर निर्माण की घटना का उल्लेख किया। महात्मा गांधी के प्रेरणा से सेठ रामेश्वर दास बिड़ला ने अमरैली में अछूतों के लिए 25 हजार रुपये दान में दिए, जिसमें स्वामी जी ने स्वयं 5200 रुपये का योगदान दिया। स्वामी जी ने इस प्रयास का गहन विश्लेषण किया। उनका मत था कि केवल नए मन्दिर या विशेष विद्यालय बनाना पर्याप्त नहीं है। असली सफलता तब मिलेगी जब अछूत बच्चों को सामान्य विद्यालयों में प्रवेश और समान अवसर मिले, जिससे समाज में समावेशिता सुनिश्चित हो। इसके लिए धन की आवश्यकता नहीं, बल्कि इच्छा शक्ति और सामाजिक दृष्टिकोण में सुधार आवश्यक है। स्वामी श्रद्धानन्द ने कहा कि मैंने 12 मई, 1926 के बाम्बे क्रॉनिकल में पढ़ा था कि ''जम्बूसर नगरपालिका के चुनाव में एक हरिजन के चुनाव के कारण वहां पर एक उत्तेजनात्मक एवं सनसनीखेज प्रचार हुआ। चार उच्च वर्ग के हिन्दू सदस्यों ने इस बात का आश्वासन दिलाया कि वे अछूत सदस्यों को नहीं छुएंगे। यदि गलती से वे अछूतों को छू भी लेंगे तो वे तत्काल स्नान करेंगे।'' 'सिविल डिसओबिडियेन्स' को जब प्रारम्भ किया जाना था तो मैंने अछूतोद्धार की कहानी सुनी। महात्मा गांधी जी के सम्मुख तो उच्च वर्ग के हिन्दू अछूतों से प्रेमपूर्वक मिले, लेकिन जब वे घर लौटे तो सभी ने स्नान किया तथा अपने कपड़े धोए। जब तक हिन्दू समाज अपने आपको तन-मन से शुद्ध नहीं करता और वे बिना बिना भेदभाव से समस्त मानवों को अंगीकार नहीं करते, तब तक इस कार्य में सफलता नहीं मिल सकती है।

उन्होंने गुजरात की घटनाओं का उदाहरण देते हुए यह दिखाया कि उच्च वर्ग के हिन्दू जब अछूतों से सार्वजनिक रूप से प्रेमपूर्वक मिलते हैं, तब भी घर लौटकर उन्होंने स्नान और कपड़े धोकर भेदभाव प्रदर्शित किया। यह तथ्य स्पष्ट करता है कि सत्यार्थक सुधार केवल बाहरी सुविधाओं से नहीं, बल्कि मानसिक और सामाजिक शुद्धता से संभव है।

स्वामी श्रद्धानन्द का दृष्टिकोण था कि सामाजिक सुधार और शिक्षा आपस में जुड़े हैं। अछूतों के लिए विशेष विद्यालयों की स्थापना आवश्यक नहीं, बल्कि सामान्य विद्यालयों में उनके प्रवेश और छात्रवृत्तियों के माध्यम से आर्थिक सहयोग अधिक प्रभावी होगा। इस प्रकार, शिक्षा और सामाजिक समता को जोड़कर ही असली सामाजिक परिवर्तन संभव है।

स्वामी श्रद्धानन्द का दृष्टिकोण गुरुकुल कांगड़ी के माध्यम से सामाजिक और

धार्मिक सुधार पर केन्द्रित था। 'द लिबरेटर' में 22 जुलाई, 1926 को प्रकाशित उनके लेख में उन्होंने स्पष्ट किया कि हिन्दू समाज की समग्र उन्नति तभी संभव है जब सामाजिक असमानताओं और अंधविश्वासों को दूर किया जाए। स्वामी जी ने लिखा कि "सात करोड़ से अधिक अछूत भाईयों को समाज में समान अधिकार नहीं देने तक हिन्दू समाज सफल नहीं हो सकता।" इसके अलावा, बाल विवाह और बाल विधवाओं के पुनविज़्वाह पर उनका दृष्टिकोण स्पष्ट और प्रगतिशील था। उन्होंने कहा कि "आठ लाख बाल विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति देना नितान्त आवश्यक है", अन्यथा धर्म का अस्तित्व खतरे में है।

स्वामी श्रद्धानन्द ने देखा कि मानव निर्मित वर्ण-व्यवस्था और सैंकड़ों जातियों की बाधा सामाजिक सुधार की सबसे बड़ी बाधा है। उन्होंने कहा कि जब तक जातियों का समापन और मानव जाति को प्राथमिक महत्व नहीं दिया जाएगा, हिन्दू धर्म का अस्तित्व खतरे में रहेगा। यह दृष्टिकोण आधुनिक समाजशास्त्र और जातिवाद-समाज सुधार की सोच से मेल खाता है, जिसमें जातीय भेदभाव को समाप्त कर समानता स्थापित करना प्रमुख लक्ष्य है।

स्वामी जी ने गुरुकुल की प्रणाली को न केवल शिक्षा का माध्यम माना, बल्कि मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक विकास का संतुलित केंद्र भी माना। उन्होंने मार्च 1902 में हरिद्वार में गुरुकुल की स्थापना की और लगभग 40 हजार रुपये मूल्य की अपनी सम्पत्ति इसमें समर्पित की। उन्होंने अपने पुत्रों को भी गुरुकुल में प्रविष्ट कराया। उनका मानना था कि "गुरुकुल के माध्यम से ही वैदिक धर्म का पुनर्जागरण और सामाजिक सुधार संभव है।" उन्होंने संन्यास धारण करने तक गुरुकुल की सेवा में अविरल प्रयास किया, यह दिखाता है कि उनका संकल्प और दायित्व धर्मपरायणता पर आधारित था।

स्वामी जी ने 'द लिबरेटर' में हिन्दू-मुस्लिम एकता के विषय पर भी गहन विचार प्रस्तुत किए। रोलेट एक्ट के समय वे साम्प्रदायिक एकता के साक्षी बने। कालांतर में उन्होंने देखा कि साम्प्रदायिक विभेद बढ़ रहा था, और इसके कारणों की सतर्क मीमांसा की। उन्होंने महात्मा गांधी के साम्प्रदायिक संतुलन पर दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए लिखा कि कभी-कभी मुसलमानों को अनावश्यक रियायतें देना हिन्दुओं के प्रति अन्याय है। उनके विचार आज भी याद रखने योग्य हैं क्योंकि साम्प्रदायिक संतुलन और सामाजिक न्याय की आवश्यकता हर युग में प्रासंगिक है।

स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने अग्रलेखों और लेखन के द्वारा देश में राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत किया। 'द लिबरेटर' के माध्यम से उन्होंने ऐसे शीषज़्क लिखे, जिनमें उनके निर्भीक विचार प्रकट होते हैं। 'इन साइड कांग्रेस', 'लखनऊ अधिवेशन', 'लाल,

बाल, पाल' और 'रोटी के बदले पत्थर' जैसे शीर्षक अपने आप में उनके क्रान्तिकारी स्वभाव और गहन दृष्टि के प्रतीक हैं।

उन्होंने 'त्याग-पत्र' शीषज़्क के अंतर्गत यह स्पष्ट किया कि वे रचनात्मक कार्यों के लिए जीवनभर तत्पर रहेंगे। उनके रचनात्मक कार्यक्रमों की रूपरेखा में सबसे पहले भारत की एकता को महत्व दिया गया। उनके अनुसार हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई सभी को एक समान मंच पर लाना आवश्यक है। सामूहिक पंचायतों के माध्यम से उनके आपसी मतभेदों का समाधान हो सकता है। दूसरा कार्य स्वदेश-निर्मित वस्तुओं को लोकप्रिय बनाना था, ताकि देश की आर्थिक शक्ति विदेशी शासन पर आश्रित न रहे। तीसरा कायज़् हिन्दुस्तानी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचारित करना था, जिससे सम्पूर्ण भारत में एकता और सहज संप्रेषण हो सके। चौथा कार्य प्रचलित सरकारी विश्वविद्यालयों की प्रणाली से भिन्न शिक्षा की एक राष्ट्रीय प्रणाली का विकास करना था, ताकि भारत की शिक्षा भारतीय संस्कृति और आदर्शों पर आधारित हो।

'द लिबरेटर' के 5 अगस्त 1926 के अंक में उन्होंने धर्म की परिभाषा पर भी विचार किया। उन्होंने यह दिखाया कि अंग्रेजी कोशों में धर्म का अर्थ किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है। लॉर्ड इरविन ने ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के आधार पर धर्म को ईश्वर और आध्यात्मिकता में आस्था के रूप में बताया, जिसके द्वारा मनुष्य की भावनाएँ नियंत्रित होती हैं। चैम्बर्स ट्वैन्टियथ सेंचुरी में धर्म को पारभौतिक शक्ति माना गया है, जो मनुष्य को उच्च आदर्शों का पालन करने की आज्ञा देती है।

स्वामी श्रद्धानन्द का एक बड़ा कार्य दलितोद्धार था। 1913 में 'दलित उद्धार सभा' की स्थापना की गई और 1921 में उन्हें इसका अध्यक्ष बनाया गया। इस कार्य में जुगल किशोर बिड़ला ने उन्हें पूरा सहयोग दिया। दिल्ली, मेरठ, गुड़गाँव, बुलन्दशहर, अलीगढ़ और मथुरा जैसे नगरों में उनके मागज़्दशज़्न में हजारों दलितों का उद्धार हुआ। उन्होंने शराब पीने और मांस खाने जैसी आदतों से उन्हें दूर किया और वैदिक धमज़् की पवित्र धारा में प्रवेश कराया। अनेक दलितों को अन्य धर्मों में जाने से रोका गया और जो अपने मूल धर्म को छोड़कर अन्य धर्म में जा चुके थे, उन्हें पुनः शुद्ध कर वापस लाया गया। इन प्रयासों से दलितों की जीवन पद्धति में सुधार हुआ और उन्हें हिन्दू समाज में अन्य जातियों के समान सम्मान मिलने लगा।

स्वदेशी के विषय में भी उनके विचार अत्यंत स्पष्ट थे। 'विदेशी वस्त्रों की होली' शीर्षक में उन्होंने बताया कि महात्मा गांधी के स्वदेशी आन्दोलन से बहुत पहले ही पंजाब में आर्यसमाज के नेताओं द्वारा यह आन्दोलन चल रहा था। उनके अनुसार भारत में स्वदेशी के प्रथम प्रचारक स्वामी दयानन्द ही थे, जिन्होंने इसे व्यवहार

में अपनाने का उपदेश दिया था। मथुरा में ऋषि दयानन्द की जन्मशती के अवसर पर शाहपुरा नरेश सर नाहरसिंह ने हाथ से कते और बुने हुए वस्त्रों को प्रदर्शित किया, जिससे यह सिद्ध होता है कि दयानन्द स्वदेशी के व्यावहारिक पक्ष पर बल देते थे। स्वयं स्वामी श्रद्धानन्द ने भी 1902 ईस्वी में हरिद्वार गुरुकुल का आचार्य बनने से बहुत पहले स्वदेशी को अपना लिया था। इसीलिए विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार उनके लिए कोई नई वस्तु नहीं था।

स्वामी श्रद्धानन्द ने 'द लिबरेटर' के 30 सितम्बर, 1926 के अंक में अछूतों की शिक्षा-व्यवस्था पर बल दिया। यह उनके विस्तृत दृष्टिकोण और सामाजिक सुधार की व्यापक योजना का परिचायक था। उन्होंने स्पष्ट रूप से माना कि केवल छुआछूत का उन्मूलन ही पर्याप्त नहीं, बल्कि दलित समाज को शिक्षा और संस्कारों से सशक्त बनाना आवश्यक है।

महात्मा गांधी के प्रति उनका गहरा आदर और भक्ति उनके लेखन में झलकती है। उन्होंने गांधीजी को 'आध्यात्मिक पिता' कहा और उनके 58वें जन्मदिन पर विशेष लेख लिखा। उसमें उन्होंने वर्णन किया कि रेल के कम्पार्टमेण्ट में बैठकर उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की कि महात्मा गांधी को वैदिक धर्म के अनुसार सौ वर्ष या उससे भी अधिक की आयु प्राप्त हो और वे साबरमती आश्रम में ध्यान-ज्योति की धारा प्रवाहित करते रहें। गांधीजी के प्रति यह श्रद्धा उनके वैदिक सिद्धान्तों से प्रेरित होकर ही उत्पन्न हुई थी।

फिर भी, वे गांधीजी की गलतियों की ओर संकेत करने से पीछे नहीं हटते थे। उन्होंने 22 नवम्बर 1919 की कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक के प्रसंग का उल्लेख किया है। लाला लाजपत राय उनके साथ यात्रा कर रहे थे। उसी बैठक में श्री चितरंजन दास और पंडित मोतीलाल नेहरू भी भाग लेने जा रहे थे। किन्तु कार्यसमिति की औपचारिक बैठक की प्रतीक्षा किए बिना गांधीजी ने स्वयं ही अपने असहयोगी साथियों की आलोचना की और अनशन की धमकी दी। श्रद्धानन्द के अनुसार यह गांधीजी की एक 'हिमालयतुल्य भूल' थी। उनके मत में यदि कायज़्समिति की बैठक तक प्रतीक्षा की जाती तो घटनाओं की समुचित जाँच के बाद सामूहिक वक्तव्य जारी किया जा सकता था। गांधीजी का यह एकल निर्णय उनके अपने निष्ठावान साथियों के लिए भी भ्रम और पीड़ा का कारण बना।

गांधीजी के प्रति उनके मन में आदर और आलोचना दोनों का संतुलन विद्यमान था। यही कारण था कि इलाहाबाद कांग्रेस अधिवेशन के समय उन्होंने गांधीजी को 'आध्यात्मिक सम्राट' कहकर संबोधित किया।

'द लिबरेटर'* के संपादकीय लेखों में स्वामी श्रद्धानन्द ने हमेशा ज्वलन्त विषयों

पर बेबाक टिप्पणी की। दयानन्द दलित उद्धार मण्डल पंजाब, होशियारपुर के कार्यों पर उनके विचार इसका प्रमाण हैं। इसी क्रम में शान्ति देवी (पूर्व में असगरी बेगम) के धर्म-परिवर्तन का मामला आया। मुस्लिम समाज ने इस धर्म-परिवर्तन को अपराध माना और स्वामी श्रद्धानन्द सहित कई व्यक्तियों पर अभियोग लगाया। किन्तु न्यायालय ने सभी को दोषमुक्त कर दिया, क्योंकि भारतीय दंड संहिता की कोई भी धारा उन पर लागू नहीं होती थी। असगरी बेगम ने धर्म-परिवर्तन के बाद स्वयं 'शान्ति देवी' नाम धारण किया और अपने मातृत्व भाव से प्रेरित होकर अपने बच्चों को भी अपने पास रखा। मजिस्ट्रेट ने अपने निर्णय में यह स्पष्ट किया कि बच्चों को अपने पास रखना माता का नैसर्गिक और न्यायसंगत अधिकार है। यह वही शान्ति देवी थीं, जिनके कारण बाद में स्वामी श्रद्धानन्द शहीद हुए। परन्तु इस प्रसंग में अदालत का निर्णय आर्यसमाज और श्रद्धानन्द के पक्ष में गया और प्रेस के माध्यम से यह संदेश पूरे देश में फैल गया कि वे किसी भी प्रकार से दोषी नहीं हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द ने जिस प्रकार की पत्रकारिता को जन्म दिया, वह भारत में आधुनिक पत्रकारिता की आधारशिला बन गई। उनके लेखन और संपादन में पाठकों के साथ एक विशेष आत्मीयता का भाव दिखाई देता है। वे केवल ग्राहकों के लिए 'ग्राहक' या 'पाठक' शब्द का प्रयोग नहीं करते थे, बल्कि उन्हें 'प्रचारक परिवार' का हिस्सा मानते थे। यह उनकी पत्रकारिता की उस नैतिकता और निकटता को दर्शाता है, जो साधारण व्यावसायिक दृष्टिकोण से कहीं ऊपर उठी हुई थी।

उन्होंने 1904 में 'सत्यवादी' नामक पत्र प्रकाशित किया। इस पत्र का महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि उसके संपादकों में उस समय के दो प्रमुख और समर्पित पत्रकार—पंडित पद्मसिंह शर्मा और पंडित रुद्रदत्त शर्मा शामिल थे। इससे स्पष्ट होता है कि स्वामी श्रद्धानन्द ने पत्रकारिता के क्षेत्र में केवल स्वर उठाने का ही काम नहीं किया, बल्कि योग्य और युगप्रवर्तक संपादकों को भी आगे बढ़ाने का प्रयास किया।

1924 से प्रकाशित होने वाली 'अलंकार मासिक पत्रिका' भी उनके प्रयासों का परिणाम थी। इसमें गुरुकुल कांगड़ी के छात्रों और स्नातकों की रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। इससे छात्रों में न केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति की प्रतिभा विकसित हुई, बल्कि वैचारिक दृष्टि से भी उनमें राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक सुधार का भाव प्रबल हुआ।

23 अप्रैल 1923 को 'अर्जुन पत्रिका' का प्रकाशन हुआ, जिसके संपादक प्रो. इन्द्र थे और इसके प्रकाशक स्वामी श्रद्धानन्द बने। यह पत्रिका आगे चलकर दिल्ली का सर्वाधिक प्रभावशाली हिन्दी दैनिक बनी। हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में साप्ताहिक

और दैनिक 'अर्जुन' दोनों का विशिष्ट स्थान है। इन पत्रों ने राष्ट्रीयता के साथ-साथ आर्य समाज की विचारधारा का प्रचार-प्रसार किया। यही कारण था कि ब्रिटिश सरकार इनके प्रति शंकालु बनी रही और कई बार इन पत्रों को उनके क्रांतिकारी लेखों के कारण प्रतिबंध और दमन का सामना करना पड़ा।

स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आए, लेकिन उनकी पत्रकारिता का प्रवाह रुक नहीं सका। अंततः 1935 में यह पत्र 'वीर अर्जुन' के नाम से पुनः प्रकाशित हुआ। यद्यपि तब तक इसका स्वरूप बदल चुका था, फिर भी यह अपनी राष्ट्रीय चेतना से भरपूर एक प्रभावशाली पत्र रहा। बाद में यह पंजाब के प्रसिद्ध आर्य समाजी नेता महाशय कृष्ण के अधीन चला गया।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्वामी श्रद्धानन्द विशुद्ध सर्जक पत्रकार थे। उन्होंने हिन्दी और उर्दू दोनों के प्रचार-प्रसार का मार्ग चुना और इसके माध्यम से सामाजिक क्रांति का उद्घोष किया। उनके सम्पादकीय लेख केवल राजनीति तक सीमित नहीं रहे, बल्कि उनमें समाज सुधार, धर्म चेतना और राष्ट्र चेतना का अद्भुत संगम दिखाई देता है। उनके द्वारा मृत्यु से पूर्व लिखे गए संपादकीय आज भी पत्रकारिता की अमूल्य धरोहर हैं। इन्हीं पर आगे आने वाली पीढ़ियों के पत्रकारों ने साहित्य बोध, धर्म बोध और राष्ट्र बोध का शंखनाद किया।

❑❑❑